



Original Article

21 वीं सदी के हिंदी साहित्य तथा सिनेमा में चित्रित शैक्षिक समस्याएँ

डॉ. रंजीत परब

सहायक प्राध्यापक

शासकीय महाविद्यालय सांकली, गोवा

Manuscript ID:

IJAAR-C130362

ISSN: 2347-7075

Impact Factor – 8.141

Volume - 13

Issue - 3

January – February 2026

Pp. 315 - 321

Submitted: 05 Feb. 2026

Revised: 14 Feb. 2026

Accepted: 20 Feb. 2026

Published: 28 Feb. 2026

Corresponding Author:

डॉ. रंजीत परब

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI: 10.5281/zenodo.22787028

DOI Link:

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22787028>



Creative Commons



सार:

इक्कीसवीं सदी में भारतीय शिक्षा-व्यवस्था समाज के सबसे महत्वपूर्ण किन्तु सर्वाधिक संकटग्रस्त क्षेत्रों में परिवर्तित होती दिखाई देती है। वैश्वीकरण, निजीकरण तथा तीव्र प्रतियोगितामूलक जीवन-शैली ने शिक्षा के मूल उद्देश्य को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। शिक्षा, जो कभी ज्ञानार्जन, मानवीय संवेदनाओं के विकास और व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया मानी जाती थी, आज मुख्यतः रोजगार प्राप्ति और आर्थिक सुरक्षा का साधन बनती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थी मानसिक तनाव, असफलता-भय, भाषाई हीनता, आर्थिक दबाव तथा पारिवारिक अपेक्षाओं के भारी बोझ से ग्रस्त दिखाई देते हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य और हिंदी सिनेमा दोनों ने इन शैक्षिक समस्याओं को अत्यन्त मार्मिकता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। कथा-साहित्य में विशेष रूप से मध्यमवर्गीय परिवारों की महत्वाकांक्षाएँ, कोचिंग संस्कृति, प्रतियोगी परीक्षाओं का दबाव तथा बेरोज़गारी की विडंबना प्रमुखता से सामने आती है वहीं सिनेमा इन समस्याओं के मनोवैज्ञानिक प्रभावों को दृश्यात्मक माध्यम से अधिक व्यापक स्तर पर प्रस्तुत करता है। फिल्मों में विद्यार्थी-जीवन की आंतरिक पीड़ा, अभिभावकीय दबाव, शिक्षा का बाज़ारीकरण और आत्महत्या जैसी त्रासद स्थितियों को प्रभावी रूप में दर्शाया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य हिंदी साहित्य और सिनेमा के तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से यह स्पष्ट करना है कि वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था मानव-केन्द्रित न रहकर बाज़ार-केन्द्रित होती जा रही है। शिक्षा का लक्ष्य अब चरित्र-निर्माण या ज्ञान-विस्तार न होकर अंक, रैंक और करियर-सफलता तक सीमित हो गया है। परिणामस्वरूप विद्यार्थी का समग्र विकास बाधित हो रहा है और शिक्षा की मानवीय संवेदना क्षीण होती जा रही है।

मुख्य शब्द: शिक्षा-व्यवस्था, रटंत प्रणाली, अंग्रेज़ी-माध्यम, कोचिंग संस्कृति, प्रतियोगी परीक्षा, मानसिक तनाव, मध्यमवर्गीय दबाव, छात्र-आत्महत्या, शिक्षा का बाज़ारीकरण, बेरोज़गारी, भाषाई असमानता, परीक्षा-केन्द्रित शिक्षा, सामाजिक प्रतिष्ठा, अभिभावकीय अपेक्षाएँ।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.

How to cite this article:

डॉ. रंजीत परब. (2026). 21 वीं सदी के हिंदी साहित्य तथा सिनेमा में चित्रित शैक्षिक समस्याएँ. *International Journal of Advance and Applied Research*, 13(3), 315 - 321. <https://doi.org/10.5281/zenodo.22787028>



प्रस्तावना:

मुख्य विषय:

आज भारतीय समाज में शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति का माध्यम नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज दोनों के विकास का आधार बन चुकी है। शिक्षा मनुष्य को बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक रूप से परिपक्व बनाती है तथा उसे सही-गलत का विवेक प्रदान करती है। आधुनिक भारत में शिक्षा सामाजिक परिवर्तन, समानता और जागरूक नागरिकता की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति मानी जाती है। यह व्यक्ति को केवल रोजगार प्राप्त करने योग्य नहीं बनाती, बल्कि उसमें आत्मविश्वास, तर्कशीलता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास भी करती है।

वर्तमान समय में शिक्षा आर्थिक उन्नति का प्रमुख साधन है, क्योंकि तकनीकी और ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में कुशल और प्रशिक्षित मानव-संसाधन की आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन-स्तर को सुधार सकता है और समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकता है। साथ ही, शिक्षा सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वास और असमानता के विरुद्ध जागरूकता उत्पन्न करती है तथा स्त्री-पुरुष समानता, वैज्ञानिक सोच और नागरिक उत्तरदायित्व को सुदृढ़ करती है।

शिक्षा व्यक्तित्व-निर्माण, सामाजिक समरसता, लोकतांत्रिक चेतना और राष्ट्रीय विकास का आधार है। अतः शिक्षा को मानव-निर्माण की प्रक्रिया के रूप में समझना और उसे अधिक मानवीय, समावेशी तथा मूल्यपरक बनाना समय की आवश्यकता है। भारतीय समाज में शिक्षा को सदैव संस्कार, ज्ञान और सामाजिक प्रगति का आधार माना गया है। शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य के भीतर निहित क्षमताओं का

विकास करना, उसकी चेतना को विस्तृत करना तथा उसे एक संवेदनशील नागरिक बनाना है। किन्तु आधुनिक समय में शिक्षा का स्वरूप तेजी से परिवर्तित हुआ है। अंक, डिग्री और नौकरी की अनिवार्यता ने शिक्षा को साधनात्मक बना दिया है। आज विद्यार्थी का मूल्यांकन उसकी जिज्ञासा या प्रतिभा से नहीं, बल्कि परीक्षा-परिणाम और प्रतिस्पर्धात्मक उपलब्धियों से किया जाता है। आज समाज में कुछ तत्व ऐसे हैं जिन्होंने शिक्षा को बिकावु बना दिया है। आज शिक्षा बिकने लगी है, उसके उद्देश्य बदल गए हैं। कई स्तरों पर उसमें भ्रष्टाचार भी बढ़ने लगा है और इन्हीं विषयों को स्थान आज के साहित्य तथा सिनेमा में मिल रहा है।

समकालीन हिंदी साहित्य और सिनेमा इस संकट को पहचानते हैं और शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रश्न उठाते हैं। साहित्य जहाँ व्यक्ति के आंतरिक मनोविज्ञान को अभिव्यक्त करता है, वहीं सिनेमा सामाजिक यथार्थ को दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। दोनों माध्यम मिलकर शिक्षा-प्रणाली की जटिलताओं को व्यापक रूप में सामने लाते हैं।

समकालीन साहित्य में समाज की समस्याएँ जैसे शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियाँ, बेरोजगारी, मध्यमवर्गीय संघर्ष, पारिवारिक दबाव, स्त्री की स्थिति और सांस्कृतिक परिवर्तन गंभीरता से चित्रित हो रहे हैं और सिनेमा इन्हीं विषयों को आधार बनाकर उन्हें व्यापक जनसमूह तक पहुँचाने का कार्य कर रहा है। कई बार फिल्मों की कथावस्तु साहित्यिक कृतियों, कहानियों या उपन्यासों से प्रेरित होती है, इसलिए सिनेमा को साहित्य की दृश्यात्मक अभिव्यक्ति माना जाता है। साहित्य जहाँ पाठक की कल्पना-शक्ति को सक्रिय करता है, वहीं सिनेमा उसी कल्पना को प्रत्यक्ष अनुभव में परिवर्तित कर देता है। उसे मूर्त सक्रिय रूप प्रदान करता है।



दोनों माध्यमों में अभिव्यक्ति की शैली भिन्न होते हुए भी लक्ष्य समान है, जैसे मानव जीवन की यथार्थ स्थितियों को प्रस्तुत करना और साहित्य अधिक गहराई और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रदान करता है, जबकि सिनेमा व्यापकता और तात्कालिक प्रभाव उत्पन्न करता है। आधुनिक तकनीक, ओटीटी मंचों और दृश्य-माध्यमों के विस्तार ने सिनेमा की पहुँच को अत्यधिक बढ़ा दिया है, जिससे साहित्यिक विचार भी अधिक व्यापक समाज तक पहुँचने लगे हैं।

अतः कहा जा सकता है कि समकालीन साहित्य और सिनेमा परस्पर पूरक हैं। साहित्य सिनेमा को कथ्य, संवेदना और विचार प्रदान करता है, जबकि सिनेमा साहित्य को लोकप्रियता और व्यापक जनसंपर्क देता है। दोनों मिलकर समाज को जागरूक करने, सामाजिक समस्याओं पर विचार उत्पन्न करने तथा मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारतीय साहित्य और सिनेमा का संबंध आरम्भ से ही अत्यन्त घनिष्ठ और परस्पर पूरक रहा है। साहित्य समाज की सामूहिक चेतना, संवेदनाओं और अनुभवों का संचित प्रतिबिम्ब होता है, जबकि सिनेमा उसी प्रतिबिम्ब को दृश्य-श्रव्य रूप देकर उसे अधिक जीवंत और व्यापक बना देता है। साहित्य ने सिनेमा को कथ्य, संवेदना और वैचारिक आधार प्रदान किया, वहीं सिनेमा ने साहित्य को जनसंचार का प्रभावशाली माध्यम उपलब्ध कराया।

गीत, संवाद और पटकथा के स्तर पर भी साहित्यकारों और कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिससे सिनेमा की भाषा और संवेदनशीलता समृद्ध हुई। तकनीकी विकास और डिजिटल माध्यमों के प्रसार के कारण सिनेमा आज दूरदर्शन, मोबाइल, कम्प्यूटर और ओटीटी प्लेटफॉर्म के माध्यम से समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँच गया है। इस प्रकार सिनेमा अब

सामाजिक चेतना के निर्माण का प्रभावशाली साधन बन गया है।

हिंदी सिनेमा का आरंभ 1913 में दादासाहेब फाल्के की मूक फिल्म राजा हरिश्चंद्र से हुआ, जिसने भारतीय चलचित्र परंपरा की नींव रखी। 1931 में आलम आरा के साथ बोलती फिल्मों का युग शुरू हुआ और गीत-संगीत हिंदी फिल्मों की विशेष पहचान बन गया। 1950-60 का दशक हिंदी सिनेमा का स्वर्ण युग माना जाता है, जब सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदनाएँ और आदर्शवादी विषयों पर आधारित फिल्में बनीं। 1970-80 के दशक में व्यावसायिक तथा 'मसाला' फिल्मों का दौर आया, जिनमें एक्शन, रोमांच और सामाजिक आक्रोश प्रमुख रहे। 1990 के बाद वैश्वीकरण के प्रभाव से पारिवारिक, प्रेम और प्रवासी भारतीय जीवन पर आधारित भव्य फिल्मों का निर्माण बढ़ा, जबकि 21वीं सदी में तकनीकी विकास, नए विषयों, महिला-केंद्रित कथानकों और ओटीटी माध्यमों के कारण हिंदी सिनेमा अधिक विविध, यथार्थवादी और विश्वस्तरीय रूप में विकसित हो गया। इसमें मनोरंजन के साथ-साथ, आज के समाज का यथार्थ, बदलते हुए समाज का चित्रण तथा अनेक समस्याओं का चित्रण भी हम देख सकते हैं।

समकालीन शिक्षा-व्यवस्था की सबसे बड़ी समस्या रटत पद्धति है। साहित्य में मध्यमवर्गीय परिवार बच्चों की रुचि की उपेक्षा कर उन्हें डॉक्टर-इंजीनियर बनाने का प्रयास करते हैं। शिक्षा समझ की प्रक्रिया न होकर परीक्षा-केन्द्रित तैयारी बन जाती है। ममता कालिया के उपन्यास 'दौड़' में मध्यमवर्गीय परिवार अपने बच्चों को इंजीनियर और डॉक्टर बनाने के लिए उनकी रुचियों की उपेक्षा करता है। बच्चे की व्यक्तिगत प्रतिभा गौण हो जाती है और परीक्षा-केन्द्रित शिक्षा प्रमुख बन जाती है।

सिनेमा में यह स्थिति अत्यंत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। विद्यार्थियों को विषय को समझने के बजाय परिभाषाएँ याद



करने के लिए बाध्य किया जाता है। शिक्षण-प्रक्रिया जिज्ञासा पर आधारित न होकर स्मृति-आधारित बन जाती है। विद्यालय और शिक्षक भी पुस्तकानुसार उत्तर को ही सही मानते हैं। परिणामस्वरूप रचनात्मकता और मौलिकता समाप्त होने लगती है। “3 इडियट्स” फिल्म में छात्र ‘रैंचो’ शिक्षा के रचनात्मक स्वरूप का पक्षधर है, जबकि ‘चतुर’ रटत प्रणाली का प्रतीक है। परीक्षा में रटकर टॉप करना और विषय को न समझना यही व्यवस्था का दोष बताया गया है। फिल्म 3 इडियट्स भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की उन विसंगतियों को उजागर करती है जिनमें ज्ञान के स्थान पर अंक और रैंक को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। शिक्षण-प्रक्रिया समझ और जिज्ञासा पर आधारित न होकर रटत पद्धति पर टिकी दिखाई देती है, जहाँ विद्यार्थी विषय को आत्मसात करने के बजाय परिभाषाएँ याद करने के लिए बाध्य होते हैं और शिक्षक भी वही उत्तर सही मानते हैं जो पुस्तकानुसार हो। “तारे जमीन पर” में ईशान अवस्थी पढ़ाई में कमजोर है क्योंकि उसकी सीखने की शैली भिन्न है (डिस्टलेक्सिया), पर विद्यालय उसे “निकम्मा” घोषित कर देता है। यह रटत शिक्षा की अमानवीयता को उजागर करता है। सीखने की भिन्नता वाले बच्चों को अयोग्य घोषित कर दिया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा-व्यवस्था व्यक्ति की विशिष्टता को स्वीकार करने में असफल है। उसी तरह अंग्रेजी-माध्यम और भाषाई हीनता की समस्या भी सामने आती है, आधुनिक समाज में अंग्रेजी भाषा को सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक मान लिया गया है। मध्यमवर्गीय परिवार अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में पढ़ाना सामाजिक सम्मान से जोड़कर देखते हैं। परिणामस्वरूप बच्चे अपनी मातृभाषा और सांस्कृतिक पहचान से दूर होने लगते हैं।

फिल्म ‘हिंदी मीडियम’ भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में विद्यमान भाषाई असमानता की समस्या को प्रभावशाली ढंग से

प्रस्तुत करती है, जहाँ अंग्रेजी भाषा को ज्ञान, आधुनिकता और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक मान लिया गया है तथा हिंदी या मातृभाषा में शिक्षित विद्यार्थियों को स्वतः ही हीन समझा जाता है। विद्यालयों में प्रवेश की प्रक्रिया से लेकर सामाजिक व्यवहार तक अंग्रेजी बोलने की क्षमता को योग्यता का पर्याय बना दिया गया है, जिसके कारण अभिभावक अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में पढ़ाने के लिए आर्थिक, सामाजिक और मानसिक दबाव सहने को विवश दिखाई देते हैं। फिल्म यह भी दिखाती है कि अंग्रेजी माध्यम शिक्षा अक्सर वास्तविक ज्ञान या समझ से अधिक दिखावे और स्टेटस का साधन बन जाती है, जबकि सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चे संसाधनों की कमी के बावजूद संवेदनशील और व्यवहारिक ज्ञान से संपन्न होते हैं। इस भाषाई विभाजन से समाज में वर्गभेद गहरा होता है अंग्रेजी जानने वाला उच्च वर्ग और मातृभाषा में शिक्षित निम्न वर्ग जिससे बच्चों में आत्मविश्वास की कमी, हीनभावना और सांस्कृतिक दूरी पैदा होती है। परिणामतः शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञानार्जन और व्यक्तित्व-विकास न रहकर भाषा के आधार पर सामाजिक पहचान प्राप्त करना बन जाता है। फिल्म अंततः यह संकेत देती है कि किसी भी भाषा की श्रेष्ठता उसके माध्यम में नहीं बल्कि उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान और मानवीय मूल्यों में निहित होती है, इसलिए मातृभाषा आधारित शिक्षा को सम्मान देना और भाषाई समानता स्थापित करना आवश्यक है।

आज शिक्षा में बाजारीकरण अपने पाव पसारता हुआ दिखायी देता है, आज वैश्वीकरण और निजीकरण के प्रभाव से शिक्षा अब सेवा न रहकर व्यवसाय बन गई है। विद्यालय, कॉलेज और कोचिंग संस्थान ज्ञान प्रदान करने की अपेक्षा आर्थिक लाभ पर अधिक केन्द्रित हो गए हैं। शिक्षा की बढ़ती लागत निम्न एवं मध्यम वर्ग के लिए गंभीर समस्या बन गई है।



गरीब छात्र संसाधनों के अभाव में उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते हैं, जबकि महंगे कोचिंग संस्थान आर्थिक रूप से सक्षम विद्यार्थियों को ही अवसर प्रदान करते हैं। इस प्रकार शिक्षा सामाजिक समानता स्थापित करने के बजाय असमानता को बढ़ाने का माध्यम बनती जा रही है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवां' में महानगरीय जीवन और आर्थिक संघर्ष के बीच शिक्षा एक महंगी व्यवस्था बन जाती है। निम्न एवं मध्यम वर्ग शिक्षा के खर्च के कारण आर्थिक संकट में पड़ जाता है।

फिल्म 'सुपर 30' भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की उस विडम्बना को सामने लाती है जिसमें शिक्षा समान अवसर का माध्यम होने के बजाय आर्थिक असमानता का दर्पण बन जाती है। यहाँ प्रतिभा की पहचान योग्यता से नहीं बल्कि आर्थिक स्थिति से निर्धारित होती दिखाई देती है, क्योंकि गरीब और ग्रामीण पृष्ठभूमि के मेधावी विद्यार्थी संसाधनों, पुस्तकों, मार्गदर्शन और महंगी कोचिंग संस्थाओं के अभाव में उच्च शिक्षा तक पहुँच ही नहीं पाते। फिल्म यह भी दिखाती है कि प्रतियोगी परीक्षाएँ विशेष रूप से आईआईटी प्रवेश परीक्षा इतनी कठिन और कोचिंग-केन्द्रित बना दी गई हैं कि विद्यालयी शिक्षा गौण हो जाती है और कोचिंग संस्थान शिक्षा को व्यवसाय में बदल देते हैं, जहाँ ज्ञान से अधिक फीस और विज्ञापन का महत्व है। इस व्यवस्था में आर्थिक रूप से कमजोर विद्यार्थी हीनभावना, असुरक्षा और आत्मविश्वास की कमी से जूझते हैं तथा सामाजिक-वर्गीय विभाजन उनके मन में यह धारणा पैदा कर देता है कि उच्च शिक्षा केवल अमीरों का अधिकार है। साथ ही शिक्षा का शहरी-केन्द्रित स्वरूप भी स्पष्ट होता है, जहाँ गाँवों और झुग्गी-बस्तियों के छात्रों को आधारभूत सुविधाएँ बिजली, शांत वातावरण, पोषण और अध्ययन सामग्री तक उपलब्ध नहीं होतीं, जिसके कारण उनकी प्रतिभा विकसित होने से पहले ही दब जाती है। फिल्म शिक्षक

की भूमिका को भी रेखांकित करती है कि यदि शिक्षा संवेदनशील और प्रेरणादायक हो तो वह आर्थिक व सामाजिक बाधाओं को पार कर सकती है, किंतु वर्तमान व्यवस्था में ऐसे प्रयास अपवाद के रूप में दिखाई देते हैं। इस प्रकार 'सुपर 30' यह संकेत देती है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल प्रतियोगी परीक्षा में चयन नहीं बल्कि सामाजिक समानता स्थापित करना और प्रतिभा को अवसर प्रदान करना होना चाहिए। प्रतियोगी परीक्षा और कोचिंग संस्कृति जैसे विषयों को आज सिनेमा उजागर किया जा रहा है। प्रतियोगी परीक्षाओं ने शिक्षा को पूर्णतः प्रतिस्पर्धात्मक बना दिया है। विद्यार्थी अपने जीवन का महत्वपूर्ण समय कोचिंग संस्थानों में व्यतीत करते हैं। विद्यालयी शिक्षा गौण हो जाती है और परीक्षा-तैयारी ही शिक्षा का पर्याय बन जाती है।

अभिभावक बच्चों की रुचि और क्षमता की उपेक्षा कर सुरक्षित समझे जाने वाले करियर थोपते हैं। निरंतर तुलना और रैंक-केन्द्रित मानसिकता विद्यार्थियों में भय और असुरक्षा उत्पन्न करती है। रचनात्मकता और नवाचार को अनुशासनहीनता समझ लिया जाता है तथा शिक्षक-विद्यार्थी संबंध संवाद के स्थान पर नियंत्रण पर आधारित हो जाता है और इसी का परिणाम मानसिक तनाव में होता है की कई छात्र ऐसे हालात में आत्महत्या का मार्ग अवलंबित करते दिखाई देते हैं। परीक्षा-केन्द्रित शिक्षा विद्यार्थियों में अत्यधिक मानसिक दबाव उत्पन्न करती है। असफलता को अपमान समझा जाने लगा है। सामाजिक अपेक्षाएँ विद्यार्थियों को इतना दबाव देती हैं कि वे आत्मग्लानि और अवसाद में चले जाते हैं। "3 Idiots" में जॉय लोबो नामक छात्र प्रोजेक्ट पूरा न कर पाने और शिक्षक के दबाव से आत्महत्या कर लेता है।

फिल्म 'छिछोरे' आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में बढ़ती परीक्षा-केन्द्रित मानसिकता और असफलता के भय को प्रमुख



शैक्षिक समस्या के रूप में रेखांकित करती है। इसमें दिखाया गया है कि विद्यार्थियों के लिए सफलता का अर्थ केवल प्रतियोगी परीक्षाओं में चयन और अच्छे अंक प्राप्त करना रह गया है, जबकि असफलता को जीवन की समाप्ति के समान मान लिया जाता है। अभिभावकों, समाज और शैक्षणिक वातावरण द्वारा निर्मित अपेक्षाएँ विद्यार्थियों पर इतना मानसिक दबाव डालती हैं कि वे अपनी क्षमता और व्यक्तित्व को अंकतालिका से जोड़कर देखने लगते हैं; परिणामस्वरूप परीक्षा में असफल होने पर वे गहरे अवसाद, आत्मग्लानि और निराशा में चले जाते हैं। फिल्म यह भी स्पष्ट करती है कि शिक्षा-संस्थान में सीखने, खेल, मित्रता और व्यक्तित्व-विकास के स्थान पर केवल परिणाम और रैंक को महत्व दिया जाता है, जिससे विद्यार्थी जीवन का संतुलन बिगड़ता है और मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। कहानी के माध्यम से यह संदेश सामने आता है कि असफलता शिक्षा-प्रक्रिया का स्वाभाविक हिस्सा है, परन्तु वर्तमान व्यवस्था उसे स्वीकार करने की मनोवैज्ञानिक तैयारी नहीं देती; इसी कारण कई विद्यार्थी आत्मघाती कदम तक उठा लेते हैं। इस प्रकार छिछोरे यह संकेत देती है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल 'टॉपर' बनाना नहीं, बल्कि आत्मविश्वासी, संतुलित और जीवन-संघर्षों से जूझने में सक्षम व्यक्तित्व का निर्माण होना चाहिए।

शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी रोजगार न मिलना आधुनिक समाज की बड़ी समस्या है। डिग्री होने के बावजूद विद्यार्थियों को उपयुक्त कार्य नहीं मिलता। शिक्षा और रोजगार के बीच असंगति दिखाई देती है। विद्यार्थी अपनी रुचि के विपरीत विषयों का अध्ययन करते हैं और परिणामस्वरूप असंतोष तथा निराशा का अनुभव करते हैं।

फिल्म तारे ज़मीन पर शिक्षा-व्यवस्था में बच्चों की व्यक्तिगत भिन्नताओं की उपेक्षा को एक गंभीर शैक्षिक समस्या

के रूप में प्रस्तुत करती है। कहानी ईशान अवस्थी नामक बच्चे के माध्यम से यह दिखाती है कि विद्यालयों में सभी विद्यार्थियों को एक ही मानक से आँका जाता है, जबकि प्रत्येक बच्चे की सीखने की क्षमता, गति और रुचि अलग होती है। ईशान को पढ़ने-लिखने में कठिनाई (डिस्ट्रेक्सिया) होने के बावजूद शिक्षक और अभिभावक उसकी समस्या को समझने के बजाय उसे आलसी, शरारती और अयोग्य मान लेते हैं, परिणामस्वरूप वह निरन्तर दंड, उपेक्षा और अपमान का सामना करता है। रटन्तु पद्धति, परीक्षा-केन्द्रित मूल्यांकन और कठोर अनुशासनात्मक वातावरण बच्चे की रचनात्मकता और आत्मविश्वास को नष्ट कर देते हैं तथा वह मानसिक रूप से अकेलापन और हीनभावना महसूस करने लगता है। फिल्म यह भी बताती है कि शिक्षा-प्रणाली में संवेदनशील और प्रशिक्षित शिक्षक का अभाव होने से विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की प्रतिभा दब जाती है, जबकि प्रोत्साहन और सहानुभूतिपूर्ण शिक्षण मिलने पर वही बच्चा कला और सृजनात्मकता में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकता है। इस प्रकार फिल्म संकेत देती है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल अंक दिलाना नहीं बल्कि प्रत्येक बच्चे की विशिष्ट प्रतिभा को पहचानकर उसका समुचित विकास करना होना चाहिए, और समावेशी तथा सहानुभूतिपूर्ण शिक्षण ही वास्तविक शिक्षा का आधार है।

निष्कर्ष:

समकालीन हिंदी साहित्य और हिंदी सिनेमा दोनों इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि भारतीय शिक्षा-व्यवस्था गंभीर संकट से गुजर रही है। रटंत प्रणाली, अंग्रेजी-माध्यम का दबाव, शिक्षा का बाजारीकरण, प्रतियोगी परीक्षाओं की तीव्र प्रतिस्पर्धा, मानसिक तनाव और बेरोजगारी ये सभी समस्याएँ शिक्षा के मानवीय उद्देश्य को नष्ट कर रही हैं।



आवश्यक है कि शिक्षा-नीति में रचनात्मकता, कौशल-आधारित अध्ययन, मातृभाषा-आधारित शिक्षण और मानसिक स्वास्थ्य को प्रमुख स्थान दिया जाए। शिक्षा को पुनः मानव-निर्माण की प्रक्रिया बनाना समय की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक शिक्षा व्यक्ति की प्रतिभा, संवेदनशीलता और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास नहीं करेगी, तब तक वह अपने वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकेगी। अतः यह स्पष्ट है कि साहित्य और सिनेमा केवल मनोरंजन के साधन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के वाहक हैं। दोनों माध्यम शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर कर

समाज को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करते हैं और एक मानवीय, समावेशी तथा संवेदनशील शिक्षा-व्यवस्था की आवश्यकता पर बल देते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. हिंदी साहित्य अ इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. साहित्य और समाज – डॉ. आर. पी. वर्मा
3. सिनेमा और साहित्य – डॉ। गजानन वानखडे
4. हिंदी की कई फिल्मों।